

योगशिखोपनिषद् में मन और चित्त का सम्बन्ध

शिवराज सिंह

शोधार्थी 22068,

श्रद्धानन्द वैदिक शोध संस्थान,
गुरुकुल कांगड़ी समविश्वविद्यालय,
हरिद्वार 249404

भ्वादिगणी धातु से मनन जोड़ने पर **मन** धातु की निष्पत्ति होती है जिसके अर्थ घमंड करना, पूजा करना। चुरादिगणी धातु से घमंडी होना, दिवादीगणी एवं तनादिगणी धातु से सोचना, विश्वास करना, कल्पना करना, चिंतन करना, उत्प्रेक्षा करना, विचार करना, ध्यान करना, आदर करना, मानना, देखना, समझना, मान लेना, सम्मान करना, मूल्यवान समझना, बड़ा मानना, वरेण्य समझना, जानना, प्रत्यक्ष करना, पर्यवेक्षण करना, लिहाजा करना, स्वीकृति देना, अमल करना, विचार-विमर्श करना, इरादा करना, कामना करना, आशा करना, मन लगाना, श्रद्धा दिखाना, मूल्यवान समझना, इत्यादि अर्थ विकसित होते हैं। इसी धातु से मनन करना, सोचना, प्रज्ञा, तर्कसंगत, अनुमान, अंदाजा लगाना, अर्थों की भी प्राप्ति होती है। इसी मन धातु से **मनस** शब्द जो नपुंसकलिंग में है बनता है। जिसमें **करण** अर्थ में **असुन** प्रत्यय का सहयोग होता है इस मन के मन, हृदय, समझ, प्रत्यक्ष ज्ञान, प्रज्ञा, संज्ञान, वह उपकरण जिसके द्वारा ज्ञेय पदार्थ आत्मा को प्रभावित करते हैं, चेतना, निर्णय या विवेचन की शक्ति, सोच, विचार, उत्प्रेक्षा, कल्पना, प्रत्यय, योजना, प्रयोजन, अभिप्राय, संकल्प, रुचि, स्वभाव, तेज, ओज, सत्व, मानस नमक सरोवर आदि अर्थ भी निष्पन्न होते हैं।¹

आयुर्वेद में मन को सूक्ष्म-इन्द्रिय और ज्ञान का उपादान माना है। इसकी उत्पत्ति के लिए आयुर्वेद तीन प्रमुख ग्रन्थों चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, अष्टाङ्गहृदय के साथ सांख्य शास्त्र का सहारा लेता है। जिसमें सृष्टि-विकास क्रम इस प्रकार है—प्रकृति → महत / बुद्धि → अहंकार → मन एवं इन्द्रियाँ।

पुरुष (बीजधर्मा) + **प्रकृति** (प्रसवधर्मिणी)

बुद्धि (महतत्त्व)

अहंकार

(सात्त्विक)

तामसिक

पंच ज्ञानेन्द्रियां

पंच कर्मेन्द्रियां

राजसिक)

पंचतन्मात्राएँ

पंचमहाभूत

मन

संयुक्त

शरीर

इससे स्पष्ट है कि मन का मूल अहंकार, अहंकार का मूल महत्त्व (बुद्धि) तथा बुद्धि का मूल प्रकृति। मन का जन्म विशेष रूप से तैजस अहंकार अर्थात् रजोगुण प्रधान अहंकार से इन्द्रियाँ और मन प्रकट होते हैं। चरक संहिता में सात्त्विक अहंकार से मन और इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं।² आचार्य सुश्रुत ने मन को अहंकार की विकृति माना है, और यह आत्मा और इन्द्रियों के बीच स्थित बताते हुए इसे सूक्ष्म और अध्यात्म प्रेरित अंग माना गया है।³

¹-संस्कृत हिन्दी कोष, वामन शिवरान आटे। पृष्ठ संख्या 770, 771

² तत्र वैकारिकादहंकारात् मनसश्चेन्द्रियाणि जायन्ते।। चरक संहिता, सूत्रस्थान 1/22

³ अहंकारविकृतिरेव मनः। मनसश्चेन्द्रियार्थसंयोगः। सुश्रुत संहिता, शारीरस्थान 1/20-21

मनुष्य के शरीर में मूलाधार चक्र की स्थिति का निर्धारण करने के पश्चात मूलाधार चक्र में कुण्डलिनी नाम की एक पराशक्ति निवास करती है इस परा शक्ति से **मन** की उत्पत्ति मानी गई है अर्थात मन की उत्पत्ति कुण्डलिनी शक्ति से मानी गई है न की कुण्डलिनी से। कुण्डलिनी शक्ति प्रत्येक मनुष्य में स्थित होती है।⁴ पुनः इसी बात को स्वीकार करते हुए मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी शक्ति से बिंदु और अनाहत नाद को उत्पन्न मानते हुए और इसी से हंस नामक तत्व और मन को उत्पन्न माना गया है।⁵ मन को चन्द्रमा का अंश बताते हुए, प्राण वायु को सूर्य का और आंख को अग्नि का अंश स्वीकार करते हुए बिंदु, अनाहत नाद, कला को कमशः विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र के प्रतीक के रूप में लिया गया है।⁶ मन और बिंदु को ही उत्पत्ति और स्थिति का कारण बताते हुए मन से ही बिंदु को इस प्रकार उत्पन्न होते हुए माना गया है जिस प्रकार दूध से घी उत्पन्न होता है अर्थात मन से बिंदु को उत्पन्न करने के लिए विधिवत प्रयास करने की आवश्यकता होती है।⁷ शरीर में जो नाद है उसी को बिंदु स्वीकार किया है और इस बिंदु का ही चित् के रूप में प्रसार किया है इसलिए नाद, बिंदु और चित् को अपने निरन्तर अभ्यास से एक करने का प्रयास करना चाहिए।⁸

मन व चित की उत्पत्ति और स्थिति अलग-अलग है अतः सम्बन्ध भिन्न है, सभी मनुष्यों का मन, प्राण के साथ ठीक उसी प्रकार से बंधा हुआ है जिस प्रकार से पक्षी को रस्सी से बांध देते हैं जहां प्राण की गति होगी वहां मन जाएगा।⁹ मनुष्य का चित्, कामनाओं के कारण विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को अपनी स्मृति के अनुसार याद करता है जिस स्थान पर प्राण वायु स्थित होती है उसी स्थान पर चित् होता है, प्राण वायु के गतिशील होने पर चित् भी गतिशील होगा।¹⁰ मन व चित के साथ प्राण का व्यवहार गति के साथ एक जैसा है अतः सम्बन्ध एक जैसा है मनुष्य अनेक प्रकार के विचार-विमर्शों से मन को वश में नहीं कर सकता। योग के अभ्यास के अन्तर्गत आने वाले प्राणायाम के अभ्यास से मनुष्य अपने मन को वश में कर सकता है क्योंकि प्राण के साथ मन की गति होती है और प्राण के स्थिर होने पर मन भी स्थिर हो जाता है।¹¹ बाह्य जगत से सम्बन्ध रखने वाली जिज्ञासा में मनुष्य के चित्त की क्रियाशीलता के कारण मनुष्य को अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है, मनुष्य को अपने चित्त की क्रियाशीलता को कम करने का प्रयास करना चाहिए जिससे जगत में होने वाली क्रियाशीलता का मनुष्य पर कम प्रभाव पड़े।¹² चित्त के चलने पर संसार से जुड़े हुए विचार चित्त में आते रहते हैं।

4-यस्मादुत्पद्यते हंसो यस्मादुत्पद्यते मनः।

तदेतत्कामरूपाख्यं पीठं कामफलप्रदम्॥ योगशिखोपनिषद् 1.171

5 यस्माद् उत्पद्यते बिन्दुर्यस्माद् नादः प्रवर्तते।

यस्मादुत्पद्यते हंसो यस्मादुत्पद्यते मनः॥ योगशिखोपनिषद् 5.7

6 मनश्चन्द्रो रविर्वायुर्दृष्टि रग्निरुदाहृतः।

बिन्दु नाद कला ब्रह्मन् विष्णु ब्रह्मेश देवताः॥ योगशिखोपनिषद् 6.70

7 मन एव हि बिन्दुश्च उत्पत्तिस्थितिकारणम्।

मनसोत्पद्यते बिन्दुर्यथा क्षीरं घृतात्मकम्॥ योगशिखोपनिषद् 6.73

8 यो वै नादः स वै बिन्दुस्तद् वै चित्तं प्रकीर्तितम्।

नादो बिन्दुश्चित्तं च त्रिभिर्देवैः प्रसाधयेत्॥ योगशिखोपनिषद् 6.72

9 चित्तं प्राणेन सम्बद्धं सर्वजीवेषु संस्थितम्।

रज्ज्वा यद्वत् सुसम्बद्धः पक्षी तद्वदिदं मनः॥ योगशिखोपनिषद् 1.59

10 स्मृत्वा कामरतं चित्तं विजानीयात् कलेवरे।

यत्र देशे वसेद् वायुश्चित्तं तद् वसते ध्रुवम्॥ योगशिखोपनिषद् 6.69

11 नानाविधैर्विचारैस्तु न बाध्यं जायते मनः।

तस्मात्तस्य जयोपायः प्राण एव हि नान्यथा॥ योगशिखोपनिषद् 1.60

12 चित्तं कारणमर्थानां तस्मिन् सति जगत् त्रयम्।

तस्मिन् क्षीणे जगत् क्षीणं तच्चिकित्स्यं प्रयासतः॥ योगशिखोपनिषद् 6.59

विद्वान् मनुष्य को बुद्धिपूर्वक अपने चित्त को स्थिर करने का पर्यत्न करना चाहिए।¹³ मन व चित्त को अभ्यास और प्राणायाम से स्थिर किया जा सकता है, अतः सम्बन्ध एक जैसा है। मन विभिन्न प्रकार के कर्मों को करता रहता है मन के द्वारा किए गए कर्मों के कारण वह पुरूष पाप-पुण्य में लिप्त हो जाता है। वहीं उन्मनी अवस्था उत्पन्न होने से मनुष्य पुण्य और पाप के बन्धन से स्वतन्त्र हो जाता है। उन्मनी अवस्था में प्राण मन के साथ सुषुम्ना में स्थिर हो जाता है।¹⁴ वहीं चित्त अपने कारण में विलीन हो जाता है और प्राण वायु, सुषुम्ना में स्थिर हो जाती है इसी को लययोग कहते हैं।¹⁵ मन व चित्त के स्थिर होने पर प्राण सुषुम्ना नाडी में स्थिर हो जाता है अर्थात् सम्बन्ध एक जैसा है।

अनाहत नाद के रूप में जो ध्वनि हमें सुनाई देती है उस ध्वनि के अन्तर्गत जानने योग्य जो श्रेष्ठ तत्व उपलब्ध होता है उस तत्व में मन की उपस्थिति होती है मन को उसी तत्व में लीन कर लेने के पश्चात् **विष्णु** के रूप के समान परम पद की प्राप्ति होती है।¹⁶ जो शरीर में नाद है उसी को बिंदु स्वीकार किया है, और इस बिंदु को ही चित्त के रूप में प्रसार किया है इसलिए नाद, बिंदु और चित्त को अपने निरन्तर अभ्यास से एक करने का प्रयास करना चाहिए।¹⁷ मन व चित्त के साथ अनाहत नाद का सापेक्ष व गहरा सम्बन्ध है। मन से मन का अवलोकन करने से मन की सभी वृत्तियां शून्य हो जाती है, किसी प्रकार का विचार-विमर्श करने की आवश्यकता नहीं रहती। इस अवस्था के प्राप्त होने पर दुर्लभ कहे जाने वाले को ब्रह्मा के दर्शन प्राप्त होते हैं।¹⁸ निरन्तर योग का अभ्यास करने के परिणामस्वरूप चित्त एकाग्र या निरोध अवस्था में आ जाता है इस अवस्था में आने पर योगी अपनी आत्मा से आत्म स्वरूप का दर्शन करने के कारण संतुष्ट हो जाता है।¹⁹ मन से ब्रह्मा, चित्त से आत्म स्वरूप के दर्शन होते हैं क्या आत्मा व ब्रह्मा एक है? या दोनो अलग है।

अतः निष्कर्ष रूप से मन तत्व की उत्पत्ति को मूलाधार चक्र में कुण्डलीनि शक्ति से उत्पन्न होना स्वीकार करने पर आगे के सम्बन्ध स्थापित होते हैं। यदि मूलाधार चक्र वास्तविक रूप या प्रत्यक्ष प्रमाण में नहीं आता तब कुण्डलीनि भी प्रत्यक्ष प्रमाण में नहीं आ सकती और तब मन भी प्रत्यक्ष प्रामाणिकता में नहीं आएगा। यदि मन प्रत्यक्ष प्रामाणिकता में आता है, तब मन से उत्पन्न बिंदु और बिंदु सट्टश चित्त प्रत्यक्ष प्रामाणिकता में कैसे आएगा। यदि मन और चित्त दोनों प्रत्यक्ष प्रामाणिकता के क्षेत्र में आते हैं तब उपरोक्त सभी सम्बन्ध प्रत्यक्ष प्रामाणिकता के क्षेत्र में आएंगे। तब मन और चित्त की सहायता से भारतीय साहित्य में उपलब्ध दो सर्वोच्च तत्व **आत्मा** और **ब्रह्म** प्रत्यक्ष प्रामाणिकता में आने की सम्भावना बढ़ जाती है। कुण्डलीनि शक्ति का अंतिम लक्ष्य मन, प्राण और चित्त

¹³ चित्ते चलति संसारो निश्चले मोक्ष उच्यते।

तस्माच्चित्तं स्थिरीकुर्यात् प्रज्ञया परया विधे।। योगशिखोपनिषद् 6.58

¹⁴ मनः कर्माणि जायन्ते मनो लिप्यति पातकैः।

मनश्चेदुन्मनी भूयान्न पुण्यं न च पातकम्।। योगशिखोपनिषद् 6.61

¹⁵ तदैक्यं साधिते ब्रह्म चित्तं याति विलीनताम्।

पवनः स्थैर्यमायाति लययोगोदये सति।। योगशिखोपनिषद् 1.135

¹⁶ अनाहतस्य शब्दस्य ध्वनिर्ध्वन्य उपलभ्यते।

ध्वनेरन्तर्गतं ज्ञेयं ज्ञेयस्यान्तर्गतं मनः।

मनस्तत्र लयं याति तद् विष्णोः परमं पदम्।। योगशिखोपनिषद् 6.21

¹⁷ यो वै नादः स वै बिन्दुस्तद् वै चित्तं प्रकीर्तितम्।

नादो बिन्दुश्चित्तं च त्रिभिरैक्यं प्रसाधयेत्।। योगशिखोपनिषद् 6.72

¹⁸ मनसा मन आलोक्य वृत्तिशून्यं यदा भवेत्।

ततः परं परब्रह्म दृश्यते च सुदुर्लभम्।। योगशिखोपनिषद् 6.62

¹⁹ यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।

यत्र चैवात्मनोऽत्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति।। योगशिखोपनिषद् 3.14

को स्थिर कर सहस्त्रसार में विलीन करना है। प्राण की स्थिरता का मत केवल कुम्भक से है। जो बिना मन के प्रत्यक्ष रूप से सत्यापित नहीं हो सकती। क्योंकि महर्षि पतञ्जलि के अनुसार चित्त की वृत्तियों का निरोध करना ही योग है।

